International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 26-09-2025, Accepted: 25-10-2025, Published: 10-11-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 88-92

लोक–साहित्य में अभिव्यक्त गिरमिटिया प्रथा वा जन–स्मृति में काला पानी की गूँज : एक ऐतिहासिक अवलोकन

डॉ. अभिषेक सौरभ
अतिथि सहायक प्राध्यापक, एनसीवेब सेंटर, हिंदी विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

सारांश
अपने वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में काला पानी का सच, गिरमिटिया प्रथा की अमानवीयता और गिरमिटिया मजदूरों की उन व्यथाओं से सीधी तौर पर जुड़ी हुई है, जिन व्यथा–कथाओं में औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान अंग्रेजों के दवाब में या उनके द्वारा भ्रांतिमान तरीके से बहला–फुसलाकर, प्रलोभन देकर भारतीय नर–नारी अपने देश की मिट्टी से हजारों–हज़ार मील दूर ऊसर–बंजर ब्रिटिश अधिकार वाले बियाबान द्वीपों–प्रायद्वीपों पर ले जाये गये और उन निर्जन प्रान्तों को बिना किसी सुविधा–सहूलियत के, एक तरह से नये सिरे से उन्हें बसाने की महती जिम्मेवारी उन पर आ पड़ी। ब्रिटिश उपनिवेश के साथ–साथ डच, फ्रेंच और डैनिश उपनिवेशों की उन अपरिचित, बीहड़ भूमियों पर हाड़–तोड़ मेहनत के द्वारा ईख, कॉफी और कपास की खेती करने से लेकर वतन–वापसी की आशा में सालों–साल व्याकुलता में गुजार देना ही उनकी नियति बन गयी। औपनिवेशिक–शासन ने भारतीयों के सस्ते मजदूर होने का बेजा फ़ायदा उठाया और अपने उपनिवेश वाले तमाम देशों में उन्हें काम करने के लिए ले गए। इन्हें 'एग्रीमेंट' पर लाया गया मजदूर कहा गया। एग्रीमेंट शब्द शनैः शनैः 'गिरमिट' और पुनः 'गिरमिटिया' में बदल गया। गिरमिटिया की इस कड़ी में 'पहला गिरमिटिया' कहे जाने वाले महात्मा गाँधी से लेकर प्रवासी भारतियों की एक अंतहीन श्रृंखला विद्यमान है। प्रस्तुत आलेख में इसी गिरमिटिया प्रथा का ऐतिहासिक अवलोकन प्रस्तुत है जो पूरब की भूमि और इस भूमि के लालों–ललनाओं का पाश्चात्य जगत के लोगों से इच्छुक–अनिच्छुक मुठभेड़ से प्रारम्भ होकर विदेशी सरजमीं और कैरेबियाई प्रायद्वीपों से लेकर प्रशांत महासागर की अतल गोद में बसे द्वीपीय देशों तक की हुकूमत भारतवंशियों के हाथों में सौंप दिए जाने के प्रारब्ध का निर्माण करती है और ऐतिहासिक स्तर पर शोषणकारी व्यवस्था से लोहा लेते हुए भारतवंशियों की बेमिसाल इच्छाशक्ति व दुर्लभ जीवनशक्ति का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत करती है।

मूल शब्दः लोक–साहित्य, गिरमिटिया प्रथा, काला पानी, अरकाटी, उपनिवेश, द्वीपीय क्षेत्र, जहाजी, पूंजीवाद, दास–प्रथा, शर्तबंदी मजदूर

प्रस्तावना

जहाजी, गिरमिटिया, कुली, शर्तबंदी मजदूर सब उसी के नाम हैं। जब उसने घर छोड़ा तो मुतमइन था कि अपने बसेरे (ठीहे) पर लौट कर जरुर आएगा। दो वक़्त की मुक्कमल रोटी और तन–ढ़कने के लिए ढ़ंग के कपड़े कमा सकने की चाहत में जो एक बार पुश्तैनी घर छूटा तो छूटता ही चला गया. और 'छूटल घरवा–दुआर, छूटल जग परिवार' [1] की स्थिति निरंतर प्रगाढ़ होती चली गयी। यह त्रासद कहानी है, उन क़रीब 12 लाख भारतीयों की जो गिरमिटिया मजदूरों और जहाजियों की शक्ल में आज से करीब 190 से 100 साल पूर्व तक विभिन्न ब्रिटिश, फ्रेंच व डच उपनिवेशों में भेजे गये। गिरमिटिया प्रथा या एग्रीमेंट पर मजदूर की अवधारणा एक स्कॉटिश व्यक्ति 'विलियम ग्लैडस्टोन' [2] के दिमाग की उपज थी। हुआ यूँ कि गुलाम–प्रथा और दास–व्यापार के खिलाफ़ दुनियाभर में निरंतर निर्मित हो रहे विरोधी माहौल तथा उग्र होते जा रहे मानवाधिकार आंदोलनों के आलोक में ब्रिटिश अधिकृत प्रदेशों में 1833 में दास–प्रथा उन्मूलित कर दी गयी। 1 अगस्त, 1834 को ब्रिटिश साम्राज्य के सभी गुलाम मुक्त कर दिए गये और इसके एवज में मुक्त किये गये गुलामों के पूर्व मालिकों अर्थात ब्रिटिश पूंजीपतियों को लगभग बीस मिलियन पौंड की राहत–राशि बाँटी गयी। जबकि आजाद किये गये गुलामों को फूटी कौड़ी भी नहीं मिली।

दास–प्रथा उन्मूलन के क्रमिक दवाब में, ब्रिटेन के बाद फ्रांस और नीदरलैंड ने भी अपने गुलामों को मुक्त करने के लिए क़ानूनी कदम उठाये। जाहिर तौर पर दास–प्रथा के उन्मूलन का फैसला इन देशों के बहुत सारे उपनिवेशों में पसरे व्यापारों और अन्य प्रायोजित कार्यों पर प्रभाव डालने वाला था। इसलिए, दास–प्रथा के क़ानूनी रूप से खात्मे के बाद ब्रिटिश व डच उपनिवेशों यथा– मॉरिशस, त्रिनिदाद, गुयाना, सूरीनाम, फ़िजी, जमैका आदि एक दर्जन देशों में मजदूरों की बेतहाशा कमी हो गयी। अपने उपनिवेशों में मजदूरों की फौरी कमी को दूर करना औपनिवेशिक सत्ताओं कि वो अपरिहार्य जरुरत थी, जिसका शिकार निकट भविष्य में भोले–भाले, निरक्षर, सहनशील, भुखमरी–बेरोजगारी के शिकार, भारतवंशी किसान–मजदूरों को होना था। विलियम ग्लैडस्टोन ने सोचा क्यों न भारत से कानूनी तौर पर मजदूरों की बहाली की जाये? भारत बहुत बड़ा देश है, लोगों की जनसंख्या अच्छी है, भारतीय मेहनती भी हैं और वर्तमान में मजदूर–किसान की बहुत बड़ी आबादी आंतरिक अव्यवस्था, जमींदारी–प्रथा, रैयतवारी प्रथा, साहूकारों की अंतहीन सूदखोरी तथा लघु–कुटीर उद्योग–धंधों के मंद पड़ जाने से त्रस्त है। वे रोजगार की तलाश में हैं, गाँव छोड़ने को अभिशप्त हैं। साथ ही, भारत ब्रिटिश उपनिवेश है, इसलिए जो भी नियम–कानून बनेगा वो लंदन की राजगद्दी के हिसाब से औपनिवेशिक सरकार के मनमाफ़ि तय हो जायेगा। आम भारतीयों के लिए यही वो प्रतिकूल स्थितियाँ थी, जिसने उन्हें गिरमिटिया–प्रथा की गिरफ़्त में आने को प्रमुखता से बाध्य किया।

गिरमिटिया मजदूरों का एग्रीमेंट अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू में बहुत विस्तृत रूप से तैयार किया जाता था किन्तु मजदूर अक्सर अंगूठाछाप ही होते। उनमें से अधिकतर यह नहीं समझ पाते कि इस एग्रीमेंट में वास्तव में लिखा क्या है? आमतौर पर एग्रीमेंट में चार मुख्य बिंदु होते थे–

1. मजदूर और एजेंट ब्रिटिश सरकार के एक ख़ास अधिकृत ऑफिसर के सामने पेश होंगे और कॉन्ट्रैक्ट साइन करेंगे (अंगूठा लगायेंगे)।
2. एग्रीमेंट पाँच साल का होगा, जिसे पाँच साल बाद फिर से पाँच साल के लिए बढ़ा सकते हैं।
3. मजदूर को एग्रीमेंट ख़त्म होते ही वापस कलकत्ता भेजा जायेगा।
4. जो भी जहाज उन्हें ले जायेगा, उसमें सफाई और भोजन की व्यवस्था होगी और एक डॉक्टर भी होगा। [3]

यद्यपि इनमें भिन्न–भिन्न गिरमिटिया उपनिवेशों या देशों के लिए शर्तें या एग्रीमेंट की अवधि अलग–अलग भी होती थी; यथा– शुरुआत में मॉरीशस के लिए एग्रीमेंट की अवधि मात्र एक साल थी, जिसे बाद में बढ़ाकर तीन साल और फिर पाँच साल कर दिया गया। वैसे ही वेस्टइंडीज के लिए एग्रीमेंट की अवधि सबसे लम्बी दस साल की होती थी। लेकिन ज्यादातर गिरमिटिया द्वीपों के लिए भारतीय शर्तबंदी मजदूरों की क़रार–अवधि पाँच साल ही थी। गिरमिटिया मजदूरों को प्रति माह और प्रति सप्ताह के हिसाब से राशन देना भी तय किया गया था।

यथा– "डेढ़ पौंड चावल हफ़्ते में तीन दिन, दाल– दो पौंड प्रति मास, मछली– दो पौंड प्रति मास, घी या तेल– एक पौंड प्रति मास, नमक– एक पौंड प्रति मास।" [4] जबकि काम खुराक और नियम के अनुपात से ज्यादा थे।

मुख्यांश

गिरमिटिया बनकर दूसरे देश में जाने के लिए समन्दर पार करने का मतलब था 'काला पानी' को पार करना। पारम्परिक भारतीय हिन्दू समाज की मनरूस्थिति में उस वक़्त समुद्र या 'काला पानी' को पार करना धार्मिक रूप से पाप–कर्म सदृश था। चाहे वो सवर्ण हो या सछूत या अछूत, यदि एक बार काला पानी को पार कर लिया तो बिना शुद्धिकरण के पुनः गाँव में वापसी संभव नहीं। किन्तु यह कोई सार्वजनीन अवस्था नहीं थी। बिहार के आरा (शाहाबाद), पटना, सारण जैसे क्षेत्रों में 'काला पानी' पार करना बुरा नहीं माना जाता था। गया, मुजफ्फरपुर, बक्सर, चम्पारण, भोजपुर जिलों में भी धीरे–धीरे 'काला पानी' पार करने का धार्मिक डर जाता रहा। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आम भारतीयों को गिरमिटिया मजदूर के रूप में बहला–फुसलाकर या बरगलाकर जो अरकाटी या कन्त्राकी कलकत्ता या विदेश जाने को राज़ी करते थे, उनमें कई अरकाटी साधु–संतों का ही वेश बनाये होते थे। और जब साधु–संत ही बाहर जाने को कहें तो फ़िर कौन–सा धार्मिक डर! साधुओं का वेश धारण किये ये अरकाटी अर्थात् स्थानीय एजेंट मुर्ख या भोले–भाले भारतीयों को जो जमींदार या साहूकार के कर्ज, पारिवारिक–कलह, जातीय–उत्पीड़न या अन्य किसी–न–किसी परेशानी में फँसे होते थे, उनका हाथ और भविष्य देखने के बहाने कहा करते थे कि तुम्हारे भाग्य में तो कलकत्ता जाना लिखा है या तुम्हारा भाग्योदय कलकत्ता जाकर ही होगा।

परम्परा से साधू–संन्यासियों पर भरोसे के कारण आम लोग इन बनावटी साधुओं के कुचक्र में आसानी से फँस जाते थे। फिर ये साधू वेशधारी आरकाटी उन्हें सपत्नीक या अकेले कलकत्ता पहुँचने में मदद भी करते थे। कलकत्ता से फिर ये एग्रीमेंट प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद गिरमिटिया मजदूर के रूप में विभिन्न देशों–द्वीपों में भेज दिए जाते थे।

गांवों से रोजगार की तलाश में जो युवा नजदीकी शहरों को जाते, वे भी आरकाटियों के निशाने पर होते थे। उन युवाओं को अच्छी नौकरी और आरामदेह काम का प्रलोभन देकर ये अरकाटी कलकत्ता में भर्ती डिपो तक ले आते थे और फिर गिरमिटिया मजदूर के बतौर सात समुन्दर पार जाने और स्वदेश शायद ही लौट पाने की उनकी अंतहीन प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती। पटना, कानपुर, दिल्ली, लखनऊ, बनारस, इलाहाबाद (प्रयागराज), गाजीपुर, मैनपुरी, फैज़ाबाद, मथुरा जैसे शहर और सोनपुर का पशु–मेला गिरमिटिया मजदूरों की खोज के लिए मुफ़ीद जगह था। गिरमिटिया करार में बंध जाने के बाद जो लम्बी जहाज यात्रा होती थी, उसका बहुतों क्या किसी भी मजदूर को इल्म–मात्र तक नहीं रहता था। बहुत सारे मजदूरों को तो अरकाटी बिचौलिये यही समझाये होते थे कि फ़िजी कलकत्ता के पास ही एक बहुत सुन्दर जगह है या फ़िर मॉरिशस कलकत्ता के पास का ही एक धर्मशाला है।

फ़िर जब पानी का जहाज गिरमिटिया मजदूरों को लेकर अपने गंतव्य के लिए निकल जाता, तो मीलों–मील काले पानी के बिखराव के अतिरिक्त किसी को कुछ और नज़र नहीं आता। फ़िर जो यात्रा का संशय जहाजियों, जहाजिनियों के मन में निरंतर उमरता–घुमरता रहता, उसकी सुंदर काव्यात्मक प्रस्तुति इस लोकगीत में प्रलक्षित हुई है,

"पाल के जहजवा में रोई–धोई बैठइ हो / कैसे होई काला पानी पार रे बिदेसिया / जियरा डराये घाट क्यों नहीं आये हो / बीते दिन कई भये मास रे बिदेसिया / आयी घाट देखी फिजीया के टपूआ हो / भया मन उदास रे बिदेसिया..।"[5]

जहाजी–यात्रा के दौरान शुरूआती दिनों में कई गिरमिटिया तो अक–बकाकर जहाज खुलते ही पानी में छलाँग लगा देते थे, उनमें कई की मृत्यु हो जाती थी। उन्हें जिंदा बचाने की भी कोई कोशिश नहीं की जाती थी। हालाँकि, बाद के दिनों में छोटी नौकाओं के सहारे उनको बचाया जाने लगा। उस समय की रिवाजों के अनुसार पानी के जहाज पर छुआछुत और धार्मिक भ्रष्टता से बचने के लिए भी कुछ रूढ़िवादी गिरमिटिया काले पानी में छलाँग लगा लेते थे। यदा–कदा; स्त्रियाँ, जहाज पर सवार अंग्रेज मुलाजिमों से अपनी इज्ज़त–आबरु बचाने के लिए भी गहरे काले पानी में कूद जाया करती थीं।

उस समय के बिहार–क्षेत्र से सम्बंधित शाहाबाद (आरा), पटना, गया, सारण, मुजफ्फरपुर, चम्पारण, हजारीबाग, राँची, मुंगेर, अज़ीमाबाद, मसौढ़ी, भोजपुर, गोपालगंज आदि जिलों–जगहों पर गिरमिटिया प्रथा का खासा असर पड़ा। इन क्षेत्रों के गांवों से युवाओं की एक अच्छी खेप शर्तबंदी मजदूरों के रूप में अनजाने द्वीपों पर प्रवास कर गयी। इसका सीधा असर बिहार के बहुतेरे गांवों की सामान्य जीवन–चर्या और आर्थिक–सामाजिक संरचना पर भी पड़ा। जमींदारों, भूमिपतियों को अपने खेतों में कृषि–कार्य करवाने के लिए मजदूरों की कमी पड़ने लगी। इसलिए बाद के दिनों में जब अरकाटी गांवों–कस्बों में विदेश भेजने के लिए नये मजदूरों की खोज में आते तो जमींदारों के कारकून–लठैत उन्हें दौड़ा लेते अर्थात् पकड़ कर पीटते या भगा देते। इन बदलती स्थितियों में अरकाटी भी नये–नये रूप धरते, स्वांग रचते, ताकि ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँच बना कर उनको गिरमिटिया के रूप में अनुबंधित होने के लिए राज़ी कर सके।

गिरमिटिया के रूप में भारतीयों का ऐच्छिक–अनैच्छिक विदेश–पलायन 1830 के दशक में प्रारम्भ हो जाता है और करीब अगले आठ–नौ दशक तक जारी रहता है। इस दौरान गिरमिट प्रथा के अनुबंध के अनुसार फ़िजी, मॉरिशस, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, मलाया, जंजीबार, नेटाल, सीलोन (सिंहल द्वीप), त्रिनिदाद और टोबेगो, यूगांडा, जमैका आदि कई देशों में गिरमिटिया मजदूर ले जाये गये। प्रारम्भिक आँकड़ों के मुताबिक; 1842 से 1870 तक अरकाटियों द्वारा बहला–फुसलाकर विभिन्न द्वीपों में जो भारतवासी भेजे गये, उनकी संख्या मॉरिशस में सर्वाधिक 351401 तथा ब्रिटिश गयाना में 79691, त्रिनिदाद में 42519, जमैका में 15169, फ्रेंच उपनिवेश में 31346, नेटाल में 6448 और वेस्टइन्डियन द्वीप समूह में 7021 थी। [6] इसी तरह, बाद के एक अन्य आँकड़े के मुताबिक केवल कैरिबियन क्षेत्र के विभिन्न देशों गुयाना, त्रिनिडाड, जमैका, ग्रेनेडा, सेंट लूसिया आदि (ब्रिटिश, डच व फ्रेंच उपनिवेशों) में 1838 से 1917 के बीच गिरमिटिया अनुबंध के तहत आये कुल मजदूरों की संख्या 5,38,642 पायी गयी। [7]

लाखों भारतीय मजदूरों को पहले रेलगाड़ी से कलकत्ता जाते और फिर पानी के जहाज से विदेश–गमन करते देख भोजपुरी के किसी अज्ञात कवि या लोकगीत–गायक ने लिखा, "रेलिया बैरन पिया को लिये जाये रे.. रेलिया बैरन।" [8] यह पारम्परिक लोकगीत आज भी बिहार व पूर्वी उत्तरप्रदेश के भोजपुरी क्षेत्रों में खूब गाया जाता है। इस गीत में एक विवाहित ग्रामीण–स्त्री रेल और

जहाज को अपना दुश्मन या शत्रु सरीखा बताती है, क्योंकि उस विवाहित स्त्री का पति रेल और जहाज के द्वारा ही विदेश जा रहा है। इस सम्पूर्ण लोकगीत के विभिन्न अन्तरों में वह ग्रामीण–महिला अपने पति के रेल–टिकट के गल जाने, जिस शहर में पति काम करने जा रहा है, उस शहर के जल जाने और जिस साहब के अधीन उसका पति काम करने जा रहा है, उस साहब के गोली लगने से मर जाने की कामना करती है ताकि उसका प्रिय पति उससे दूर ना जा पाए। इतना ही नहीं, जो भी विवाहित स्त्री, पति के परदेश में होने का दुःख झेल रही है, उन सबके लिए रेल और जहाज एक सौतन के समान है। इन्हीं आशय को अपने में समेटे एक अन्य गिरमिटिया गीत के बोल हैं, "पूरबा से आइ रेलिया पच्छिम से जहजिया, पिया के लादि लेइ गइ हो, रेलिया होइ गेल मोर सबतिया पिया के लादि लेइ गइ हो...।" [9]

यद्यपि जब जमीनी सच्चाई से उस विवाहिता ग्रामीण–स्त्री का साक्षात्कार होता है कि मेरे पति विदेश इसलिए गये हैं ताकि रोजी–रोटी का उपाय कर सकें, बेहतर जीवन–यापन के लिए कुछ आर्थिक उपार्जन कर सकें; तब उसे अपने वैवाहिक–जीवन में ख़लल डालने वाले वास्तविक शत्रु की पहचान होती है और इस बदले हुए परिदृश्य में वह जान जाती है कि, "रेलिया ना बैरी, जहजिया ना बैरी, ई पईसबे बैरी ना...।" [10] 'ई पईसबा' का माजरा समझ जाने पर नव–विवाहिता ग्रामीण स्त्रियाँ अपने पति से दो तरह की मनुहार करती है। वह सोचती है कि पति कमाने गये ही हैं तो क्यों ना मनपसंद आभूषण ही मंगा लूँ। 'पूरबी' के उस्ताद महेंद्र मिसिर अपने एक लोकगीत में ग्रामीण–स्त्री के इसी मनोभाव को स्वर देते हैं, 'पनिया के जहाज से पलटनिया बनके जइह, हमके ले के अइह हो, पिया सेनूरा बंगाल के.. लेके अइह हो पिया झूमका आसाम के..'। [11] एक दूसरा मनोभाव जो है, उसमें रोजगार हेतु पति को 'काला पानी पार' या 'कलकत्ता' जाने देने का मतलब प्रियतम को खो देना है, किसी सौतन के हवाले कर देना है, उस मनोभाव को संपुष्ट करते एक अन्य लोकगीत के बोल हैं, 'नाही माँगत साया साड़ी, नाही माँगत कँगना.. रहिहा मोरा आँखी के सोझा, परदेशी मोर सजना..'।

गिरमिटिया प्रथा के प्रारम्भ होने के बाद बहुत सारे परिवारों में नव–ब्याहतायें अपने पुश्तैनी गाँव (ससुराल–पक्ष) के घरों में भावनात्मक रूप से अकेली पड़ती चली गयी। उस वक़्त अधिकांश परिवार चूँकि संयुक्त परिवार होते थे, इसलिए परिवार में हर घड़ी सास–ससुर या ननद–भौजाई किसी–न–किसी सगे–सम्बन्धियों की उपस्थिति तो जरुर रहती थी, किन्तु एक नवयौवना अपने पति की याद में भावनात्मक रूप से विरह की अवस्था में रहने को संतप्त होती थी। बाद के दिनों में भोजपुरी–अंचल की सामाजिक–सांस्कृतिक समस्याओं को अपने लोक–साहित्यों में उठाते हुए महेन्द्र मिसिर, रघुवीर नारायण और भिखारी ठाकुर जैसे लोक–कलाकारों ने रोजगार की तलाश में घर–गृहस्थी टूटने की व्यथा–कथा को भी दर्ज किया। भिखारी ठाकुर के एक लोकगीत में एक ग्रामीण–स्त्री पति के कलकत्ता चले जाने पर कहती है, "पियवा गइलन कलकतावा ए सजनी! तूरि दिहलन पति–पत्नी–नातावा ए सजनी.. गोड़वा में जूता नइखे, सिरवा पर छातावा ए सजनी, कइसे चलिहन राहातावा ए सजनी!" [12] इस लोकगीत में यदि तात्कालिक सच्चाई जोड़ें तो पति कलकत्ता से लौट कर तभी आ पायेगा, जब वह कलकत्ता में ही हो। पर पति तो काला पानी पार कर गिरमिट के एग्रीमेंट में बंध चुका है। ऐसे में विवाहिता स्त्री के सामने दिन के आठों पहर पति के आगमन की प्रतीक्षा के सिवा कोई और विकल्प नहीं है। ग्रामीण विवाहिता स्त्री के इसी मन: स्थिति को भिखारी ठाकुर ने अपने लोकगीत में शब्द–बद्ध किया, 'डगरिया जोहत ना, बीतत बाटे आठ पहरिया हो डगरिया जोहत ना।' [13] विरह की लम्बी स्थिति में विवाहिता योगिनी बनती चली जाती है।

जहाँ, दूर–परदेश में घर की याद से प्रवासी गिरमिटिया मजदूर पीड़ित है, वहीं, यहाँ स्वदेश में उन परदेशी गिरमिटिया मजदूरों की याद ने स्थानीय लोक–मानस में जो अपना अपेक्षित प्रभाव छोड़ा, उस प्रभाव का असर भोजपुरी लोकनाटक, लोकनृत्यों से लेकर लोकगीतों तक में सहज परिलक्षित होता है। फिजी के कुली–लाइन्स में गिरमिटिया बिदेसिया गा रहे हैं,

"काली कोठरिया में बीते नहि रतिया हो / किस के बताई हम पीर रे बिदेसिया / दिन–रात बीती हमरी दुःख में उमरिया हो / सूखा सब नैन के नीर रे बिदेसिया / टूट मरें हम काम में हो रामा / फ़िर भी झिड़की लगाये रे बिदेसिया / खून–पसीने से सींचे हम बगिया / बैठे–बैठे हुकुम चलाये रे बिदेसियाकृ।" [14] और यहाँ देश में किसी को पता नहीं है कि परदेशी वास्तव में मजदूरी करने "गये कहाँ?"। बोला तो यही गया था कि कलकत्ता के पास का ही कोई धर्मशाला है, वहीं जा रहे हैं। काला पानी पार करने की बात तो जेहन में ही नहीं आती। जबकि सच्चाई यही थी, "सात समुन्दर पार कराइके / इक नवा देश के सपना देखाईके / कैसे हमके उ भरमाइके / ले गयो दूर सरिनाम बताइके...।"(15)

गिरमिटिया प्रथा से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले बिहार राज्य और पूर्वी उत्तर–प्रदेश के इलाकों में प्रचलित कई विरह–विषाद व उदास स्वर वाले लोकगीत मूल–रूप से शर्तबंदी मजदूरों की अकथनीय पीड़ा से ही जुड़ी हुई है। कहीं–कहीं तो इस अनकही लोक–तात्विक उदासी के स्वर में निर्गुण तक की छाप द्रष्टवय होने लगती है, जो अतिशय शोक के उच्छलन में मानव–जिजीविषा के सांसारिक निस्सारता में परिवर्तित होते चले जाने की शब्द–प्रमाण है। भिखारी–ठाकुर रचित ऐसे ही एक निर्गुण–लोकगीत में पति की खोज में जोगिन बन जाने की बात निहित है। जोगिन बनते चले जाने के क्रम में एक–एक कर विरहन सुहागन के सारे श्रृंगार यथा– टिकली–सिंदूर–गहने तजने की बात करती है, अपने सिर का मुंडन कराने की बात करती है और पूरे शरीर में भभूत लगाकर साधुओं की मंडली संग हमेशा घुमने की बात करती है। विरह दुःख की अतिशयता से उत्पन्न इस अयाचित वैराग्य–भाव को इस निर्गुण में यूँ पिरोया गया है, "ए राम, जोगीन बन के हम, करब मालिक के उदेस..ए राम.. तुरि के गला के हार, देहब अगिया में जार, छोड़ी के परइलन परदेस.. ए राम.. टिकुली–सेनूर तजि, पिउ–पिउ भजि–भजि.. अंग में भभूत लाई, तूमा लेके घूमब हरमेस.. ए राम...।" [16]

देखा जाये तो, एक विराट भौगोलिक पटल पर गिरमिटिया प्रथा ने साझे–दुःखभाव के संवेदना की सृजना की। यहाँ स्वदेश में स्वजन दुखी हैं, तो परदेश में जहाज़ी, जहाजिन भी दुःख में है। उसके अंतस में अपने वतन, अपनी जन्मभूमि को पीछे छोड़ आने का गहरा क्षोभ है। पटना से नटाल गया ऐसा ही एक गिरमिटिया अपने पेट की खातिर वतन छोड़ आने पर अब पाश्चाताप कर रहा है और उसके लोकगीत के बोल धीरे–धीरे प्रायश्चित के स्वर में बदलते जा रहे हैं, "छोर आयी हिंदुस्तान बबुआ! पेटवा के लिए, पड़ी भरम में, छूटल पटना के सहरवा, छूट गइल गंगा मैया के अंचरवा, नाहि मानली एगो बाबा– भैया के कहनवा, बबुआ! पेटवा के लिए..।" [17] यद्यपि कालांतर में इन जहाजियों के सम्मुख उन धरतियों को ही अपना मान लेने के सिवा एक विकल्प स्वदेश–वापसी का भी था। परदेश में रहने–खाने के हिसाब से गिरमिटिया मजदूरों की आमदनी भी अपर्याप्त ही थी। आरम्भ में गिरमिटिया मजदूरों का करार पाँच वर्षों के लिए होता था किन्तु अनुबंध–अवधि पूरा होने पर स्वदेश लौटने के लिए किराया–भाड़ा की भी जमापूँजी उनके पास शेष नहीं बचती थी। कभी टिकट के पैसे अगर इकट्ठे हो जाते तो फ़िर करार (एग्रीमेंट) की कोई पेचीदगी सामने आ खड़ी होती। ऐसे में वे पुनः पांच साल के लिए गिरमिटिया प्रथा के 'ब्लैक–एग्रीमेंट' में बंध जाते थे।

बार–बार गिरमिट–क़रार के नवीनीकरण को मजबूर होती रही गिरमिटिया की पहली पीढ़ी में से अधिकांश का प्राणांत भी गिरमिट–देशों में ही हो गया। इनमें से कुछेक ही सफलतापूर्वक स्वदेश वापस लौटे। गिरमिटिया की अगली पीढ़ियों के परिप्रेक्ष्य में बात की जाए तो कालांतर में बहुत सारे भारतवंशी स्त्री–पुरुषों ने स्वदेश लौटने का विचार ही धीरे–धीरे पूर्णत: त्याग दिया और 'हारे को हरिनाम' की तर्ज़ पर इन्हीं देशों–द्वीपों को अपना मान लिया। ऐसा करने के पीछे कुछ ठोस वजहें भी थीं। यथा; स्वदेश–वापसी के विकल्प में फिर से उजड़ने का एक ख़तरा भी था। मन–मस्तिष्क में गाँव–समाज की पुरातनपंथी छवि भी थी, जिसमें एक बड़ा डर समाज से बहिष्कृत हो जाने का भी था। ऊपर से विदेशी सरजमीं को जहाजियों ने अपने जिस खून–पसीने से सींचकर स्वर्ग–सरीखा बनाया था, उस मेहनत के निष्फल हो जाने का भी डर था। कभी के निर्जन–बियाबान से वर्तमान के सुन्दर, मनोरम सरजमीं में परिवर्तित ये विदेशी भू–भाग एक तरह से इन जहाजियों, कुलियों की ही पुनर्रचना थी; और अपनी रचना से भी एक अलग मोह होता है, उससे एक अलग तरह का नैसर्गिक लगाव होता है। इसलिए, ऐसे में गिरमिटिया मजदूरों ने धीरे–धीरे अपनी कर्मभूमि अर्थात उन नव–द्वीपों को भी अपना देश मान लिया। सरनामी–भोजपुरी का एक सुपरिचित गीत है, जिसके मूल रचयिता का आज पता नहीं; किन्तु इस गीत में सुखद जीवन की आशा में पलायन के स्वर–स्वपन से लेकर कालांतर में सूरीनाम को ही अपना देश मान लेने तक की बात निबद्ध है। गीत के बोल हैं,

"लल्लारुख जहजवा पे देखत–देखत सपना, कन्त्राकीरे बनके हम तो, संग चले सरनमवा / कलकत्ता के डिपो से, जब मुल्क जहजवा पे गइली रे / खेती–बाड़ी मेहनत करके सुनली बहुत रे बतिया / सब सह–सह के हम चुप रहली, बढ़इली बाकी देसवा / साथ–साथ घर–दुआर बनइली, जिनगी अब हियाँ काटब रे / तू भी रहिए, हम भी रहबे, देश हमार सरनाम रे।" [18]

बाद के दिनों में ये भारतीय गिरमिटिया मजदूर अन्य सभ्यता–संस्कृति के लोगों के संपर्क में भी आते गये, उनसे घुलते–मिलते गये और गिरमिटिया देशों में अंतर–सांस्कृतिक सम्मिलन के द्रष्टा बने।

अपनी जन्मभूमि से हजारों–लाखों किलोमीटर दूर, अनजान और विपरीत परिवेश में रहने को मजबूर किये गये इन गिरमिटिया मजदूरों की वर्तमान पीढ़ी आज वहाँ सम्बद्ध देशों में बेहतर स्थिति में जरूर है किन्तु कभी उनके अस्तित्व पर बन आयी मुसीबतों में शारीरिक–मानसिक कष्टों से इतर अपनी सभ्यता–संस्कृति और अपने जीवन–यापन के तौर–तरीकों को भी त्याग देने का भयंकर प्रशासनिक दवाब था। उन दवाबों में अपनी लोक–परम्पराओं से विमुख होने, भक्तिपरक प्रार्थनाओं से वंचना के साथ–साथ अपनी पारम्परिक वेशभूषा में परिवर्तन का भी दवाब था। किन्तु गिरमिट पुरखों ने अपनी लोक–संस्कृति या लोक–साहित्य को उन विषम परिस्थितियों में भी भरसक जिंदा रखा है। हमारा लोकसाहित्य, हमारे समाज, सभ्यता और संस्कृति का दस्तावेज़ होता है। आम आदमी का सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, प्रेम–संघर्ष इसमें सहज भाव से अभिव्यक्त होता रहता है। मानवीय–जिजीविषा को अक्षुण्ण बनाये रखने तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में सतत संघर्षशील जीवन को गति देने में लोकसाहित्य की भूमिका अत्यंत सराहनीय होती है। संघर्ष में रमा मनुष्य अपनी मातृभाषा में ही चिंतन–मनन द्वारा वैचारिक दृढ़ता एवं आंतरिक उर्जा प्राप्त करता है। लोकभाषा और लोकसाहित्य विषम से विषम परिस्थितियों एवं बाह्य–दवाब की स्थिति में भी हमें स्थानीय सौंदर्य, गंध एवं पहचान से विमुख होने से रोक लेता है और हमारे पाँव हमारी चिर–परिचित सांस्कृतिक जमीन पर दृढ़तापूर्वक टिके रह पाते हैं। जब गिरमिटिया मजदूर के रूप में बिहार की धरती से चले जहाजी विदेशी सरजमीन पर कदम रखे तो वहाँ की आबो–हवा, परिवेश सब को अपनी नैसर्गिक स्थानीयता के ठीक उलट पाया। गिरमिटिया के तौर पर विदेशों में भेजे गये इन भारतवासियों के पास साहित्य व धार्मिक पुस्तकों के नाम पर जल्दबाजी में अपने खींसे में रख लिए गये तुलसीदास कृत रामायण का संक्षिप्त रूप (गुटका रामायण) और परदेश में मुसीबतों से रक्षा करने के विश्वास के निमित्त ली गयी पुस्तक हनुमान–चालीसा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था, किन्तु उनके मानस में अपनी चिर–संचित लोक–संस्कृति, लोक–साहित्य और लोक–भाषा जरूर थी। इसी के बल पर उन्होंने कभी हार नहीं मानी और आने वाली पीढ़ियों को भी अपनी पुश्तैनी मिट्टी भारतवर्ष की सांस्कृतिक–सामाजिक धरोहरों से अवगत कराया। अपनी लोक–भाषा और लोक–संस्कृति से उन्हें अपरिचित नहीं रहने दिया। अपने विविध संस्कार–गीतों को सहेज कर रखा। इसलिए आज दुनिया के विभिन्न हिस्सों में प्रसारित ये गिरमिटिया देश हर कहीं एक लघु–भारत के संस्करण स्वरुप भी नजर आते हैं।

उपसंहार

वैश्विक पटल पर, आज फ़िजी, त्रिनिदाद, मॉरिशस, दक्षिण अफ्रीका, केन्या, तंज़ानिया, जमैका, सूरीनाम, गयाना आदि देशों में भारतवंशी गिरमिटियों के वंशज न्यायपूर्ण स्थिति में हैं। फ़िजी, मॉरिशस, त्रिनिदाद एंड टोबेगो, सूरीनाम जैसे कई देशों में राष्ट्रीय शासन की बागडोर भी इन भारतवंशियों की हाथ में आई है और कुछ देशों में वर्तमान में भी है। बिहार की धरती का गिरमिटया–देशों के राष्ट्रप्रमुखों से यदि सूत्र खोजें तो पटना से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर स्थित पुनपुन प्रखंड के 'वाजितपुर' गाँव से मॉरिशस के पूर्व–राष्ट्रपति राजकेश्वर परयाग का नाता जुड़ा है। [19] वाजितपुर, राजकेश्वर परयाग के दादा–परदादा का गाँव है। मॉरिशस के ही एक और पूर्व–राष्ट्रपति सर शिवुसागर रामगुलाम का रिश्ता भी बिहार राज्य, भोजपुर जिले के एक गाँव 'हरिगाँव' से जुड़ा है। शिवुसागर रामगुलाम के पिता मोहित रामगुलाम 1896 में 'हिंदुस्तानी' जहाज से मॉरिशस पहुँचे थे। इसी कड़ी में त्रिनिदाद और टोबैगो की पहली महिला प्रधानमंत्री रह चुकीं कमला प्रसाद बिस्सेसर का भी नाम शामिल है, जिनके दादा की वंशावली बक्सर जिले के 'भेलूपुर' गाँव से जुड़ी है। गौरतलब है कि कमला प्रसाद बिस्सेसर के ननिहाल पक्ष वाले भारत के मद्रास क्षेत्र से गये गिरमिटिया मजदूरों में शामिल हैं। एक मद्रासी परिवार का एक बिहारी परिवार से समधियाना होना या वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होना भारत में तो सहज संभव नहीं था किन्तु यहाँ से काला पानी पार कर यह भी आसानी से सफलीभूत हो गया।

अस्पष्ट क़रार वाले शर्तबंदी मजदूरी की इस अमानवीय प्रथा के विरुद्ध गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका के नेटाल से गिरमिटिया प्रथा उन्मूलन अभियान प्रारम्भ किया। भारत में गोपाल कृष्ण गोखले ने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में मार्च 1912 में गिरमिटिया प्रथा समाप्त करने का प्रस्ताव रखा। काउंसिल के 22 सदस्यों ने तय किया कि जब तक यह अमानवीय प्रथा ख़त्म नहीं की जाती, तब तक वे हर साल यह प्रस्ताव पेश करते रहेंगे। दिसम्बर 1916 में कांग्रेस अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने भारत सुरक्षा और गिरमिट प्रथा अधिनियम प्रस्ताव पेश किया। इसके कुछ दिनों बाद फ़रवरी 1917 में अहमदाबाद में गिरमिट प्रथा विरोधी एक विशाल सभा आयोजित की गयी। उन्नीसवीं सदी के अंतिम और बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में गिरमिटिया प्रथा के उन्मूलन के लिए महात्मा गाँधी, गोपाल कृष्ण गोखले, दीनबंधु सीऍफ़ एंड्रूज, हेनरी पोलाक, मदन मोहन मालवीय, सरोजनी नायडू, तोताराम सनाढ्य, कुंती आदि ने अत्यंत सराहनीय प्रयास किये। [20]

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में गिरमिटिया प्रथा के विरुद्ध निरंतर प्रबल होते जा रहे विरोध प्रदर्शनों के फलस्वरूप भारत की ब्रितानी सरकार ने 12 मार्च, 1917 को अपने गजट में यह निषेधाज्ञा प्रकाशित कर दी कि अब भारत से बाहर के देशों को गिरमिट प्रथा के तहत मजदूर न भेजे जायें. और इस दिन के बाद सरकारी फ़रमान के तहत कोई गिरमिटिया नहीं बनाया गया, कूली या जहाजी नहीं बनाया गया। मॉरिशस के पोर्ट लुईस में आप्रवासी घाट पर कुछ काव्यात्मक पंक्तियाँ अंकित हैं, जो शिला–लेखों पर गिरमिटिया–पुरखों के याद में चिर–श्रद्धांजलि की मानिंद है–

"इतिहास ने जिसके लिए न छोड़ा कोई गवाह / इतिहास ने जिसकी कथा पूरी नहीं सुनायी / जिसने इस मिट्टी को सींचा अपने पसीने से / और पत्थरों को बदला सोने के लहलहाते खेतों में / पहला गिरमिटिया, इस मिट्टी का बेटा था / वो हमारा था, आपका था, हम सबका था।" [21]

सन्दर्भ सूची

1. द्विवेदी, भगवती प्रसाद, महेंद्र मिसिर, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2017, पृ. 102
2. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइंस, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 26
3. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइंस, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 30
4. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइन्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 276 ; उद्धृत– एच.ए. फ़र्थ, आप्रवासी एजेंट, गार्डन रीच, कलकत्ता
5. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइन्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 45
6. सनाढ्य, तोताराम, फ़िजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष, भारती–भवन, फ़िरोज़ाबाद, आगरा, सं. 1972
7. Vertovec, Steven, Indian Indentured Migration to the Caribbean, Source-Roberts and Byme (1966), Singaravelou (1990), Tinker (1974)
8. रेलिया बैरन पिया को लिये जाये रे, भोजपुरी लोकगीत; kavitakosh.org
9. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइन्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 276
10. भोजपुरी–अंचल में गाये जाने वाला एक पारम्परिक लोकगीत; kavitakosh.org
11. मिसिर महेंद्र, पनिया के जहाज से पलटनिया बनके जइह; kavitakosh.org
12. यादव, वीरेन्द्र नारायण, सिंह, राम बुझावन, सिंह, नागेन्द्र प्रसाद, मिश्र, मिथिलेश कुमारी, (सं.) भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद्, पटना, 2011, पृ. 27
13. यादव, वीरेन्द्र नारायण, सिंह, राम बुझावन, सिंह, नागेन्द्र प्रसाद, मिश्र, मिथिलेश कुमारी, (सं.) भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद्, पटना, 2011, पृ. 25
14. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइन्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 91–92
15. सूरीनामी–भोजपुरी भाषा के लोकगीत–गायक राज मोहन का गाया एक लोकगीत।
16. यादव, वीरेन्द्र नारायण, सिंह, राम बुझावन, सिंह, नागेन्द्र प्रसाद, मिश्र, मिथिलेश कुमारी, (सं.) भिखारी ठाकुर रचनावली, बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद्, पटना, 2011, पृ. 29
17. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइन्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 276
18. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइन्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 201
19. बिहार के गाँव का 'मॉरिशस कनेक्शन'!, बीबीसी हिंदी, 8 जनवरी, 2013, वेब; bbchindi.com
20. सनाढ्य, तोताराम, फ़िजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष, भारती–भवन, फ़िरोज़ाबाद, आगरा, सं. 1972
21. झा, प्रवीण कुमार, कुली लाइन्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 74